सुर साधना

समाज में और प्रकृति के साथ सुर-ताल की साधना
ज्ञान मार्ग

अंक 4, जून 2023
सहयोग राशि रु. 10/-

अनियमित पत्रक | वाराणसी ज्ञान पंचायत की पहल | सीमित वितरण के लिए

साईं वही ज्ञानी है, जो जाणे पर पीड़

सम्पादकीय :

संत कबीर जयंती पर विशेष अंक

बनारस के स्वभाव में बाबा विश्वनाथ, बुद्ध, कबीर, रविदास, गाँधी और न जाने कितने संतों का दर्शन घुला है, जो हर युग में सामान्य जीवन और आम आदमी के लिए अनुकरणीय आदर्श के रूप में स्थापित होता आया है. संत कबीर को विद्रोही, क्रांतिकारी, फक्कड़, माना गया, धर्म और जाति के पाखंड को ललकारने वाला कहा गया, संगठित ताकतों की ज्यादती की खिलाफत का अगुआ माना गया और उनकी वाणी तथा काव्य शैली को एक अद्भुत चमत्कार माना गया. लेकिन आधुनिक पठन-पाठन ने उन्हें दार्शनिक का दर्जा नहीं दिया.

आधुनिक शिक्षा नीति का यह एक ऐसा कदम है, जिसने पूरे संत दर्शन को भक्ति मार्ग में समेट दिया और उनकी वाणी (काव्य) को साहित्य में. इस तरह इस भूमि के बहुजन समाज के दर्शन को दर्शन का दर्जा देने से ही इनकार कर दिया !

आधुनिक ज्ञान-विमर्श (राजनीति, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में) जीवन के व्यापक और दूरगामी हितों तथा रोजमर्रे की गतिविधियों को एक साथ घेरने में असफल साबित हुए हैं. इसकी एक वजह बाज़ार के दबाव में दिखती है, जो टुकड़ों में चिंतन/विमर्श या पहल की प्रक्रियाओं को समर्थन देता है, और दूसरी यह कि आधुनिक ज्ञान की चिंतन प्रक्रियाओं में दिमाग(बुद्धि) को ही स्थान है, दिल (संवेदनाओं) को नहीं.

संत दर्शन में दिल और दिमाग की एकीकृत वैचारिकी की प्रधानता है. संत कबीर की वाणी व्यक्ति, समाज और लोक के बीच रंगबिरंगे भावों के धागों को बुनती हैं और इन्हें प्रेम, भाईचारा और ज़िम्मेदारी के बंधन में बांधती हैं. ऐसे बंधन, जिनमें ये परस्पर सहयोग से स्वायत्त और समृद्ध अस्तित्व बनाये रखते हैं.

लोकोन्मुख परिवर्तन के कार्यकर्त्ता और समाज से सरोकार रखने वाले जिस तरह अपने तर्कों में गाँधी, लोहिया, अम्बेडकर और मार्क्स का सहारा लेते हैं, उसी तरह कबीर और संत दर्शन को भी लायें तो न केवल ज्ञान-विमर्श ज़मीनी बनेगा बल्कि लोकचेतना को नया प्रवाह मिलेगा.

बौद्धिक सत्याग्रह

कबीर का एक सन्देश यह भी.

बौद्धिक सत्याग्रह में परिवर्तन की कल्पनाओं और प्रक्रियाओं के प्रस्थान बिंदु हो सकते हैं.

- आर्थिक गैर-बराबरी का विरोध करने के लिए कम्युनिस्ट होना ज़रूरी नहीं है.
- सामाजिक विषमता (जातीय संरचना) और धार्मिक सम्प्रदायवाद के खिलाफ खड़े होने के लिए समाजवादी, सेकुलर या प्रगतिशील होना ज़रूरी नहीं है.
- दलित उद्धार, अस्पृश्यता के खिलाफ या दलितों के सम्मान और बराबरी के लिए आगे बढ़कर संघर्ष करने वालों को अम्बेडकरवादी होना ज़रूरी नहीं है.
- स्वराज यानि हर सामाजिक इकाई की स्वायत्तता और संप्रभुता का समकालीन विचार तैयार करने के लिए गांधीवादी होना ज़रूरी नहीं है.
- बहिष्कृत समाजों के अनुभव, ज्ञान, इतिहास, विरासत और दृष्टिकोण को सार्वजनिक अभिव्यक्ति देने के लिए मीडिया या साहित्य-कला का व्यक्ति होना ज़रूरी नहीं है.
- लोकविद्या को ज्ञान की दुनिया में सम्मान और बराबरी का दर्जा मिले इसके लिए शास्त्रीय या विश्वविद्यालय के ज्ञान की अवमानना करना ज़रूरी नहीं है.
- देश की परंपराओं में आस्था रखने से कोई संघी विचार का नहीं हो जाता.
- महिलाओं का समाज में सम्मान और बराबरी का स्थान हो इसका समर्थन करने वाले 'स्त्री-वादी' हों यह ज़रूरी नहीं है.
- पश्चिम के दबदबे को स्वीकार न करना यह क्षेत्रीयतावाद या राष्ट्रवाद से उपजी सोच हो यह ज़रूरी नहीं है.

21 वीं सदी में मनुष्य की मुक्ति की विचारधाराओं को कितने कटघरों से बाहर निकलना है, यह सोच लीजिये.

हर मनुष्य ज्ञानी है

-चित्रा सहस्रबुद्धे, लोकविद्या जन आन्दोलन

संत कबीर ने सामान्य जन को ज्ञान की शक्ति से रूबरू कराया. वे तो एक सामान्य जुलाहा थे; न हिन्दू न मुसलमान. बनारस की धरती पर जन्मे कबीर साहब ने भारतीय दर्शन को जो ऊंचाइयां प्रदान कीं वे अद्‌भुत हैं. यह कैसे हुआ?

गृहस्थ जीवन और सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति अत्यंत सजग और ज़िम्मेदार रहते हुए उन्होंने सामान्य आदमी के अंदर की नैतिक शक्तियों को जागृत किया. उन्हें यह विश्वास दिलाया कि वे जो काम कर रहे हैं वह एक ज्ञान-कर्म है और वे खुद उसके ज्ञानी हैं. तभी तो चाहे धोबी हो, जुलाहा हो, लोहार हो, किसान हो, जूता बनाने वाला हो, सबके कार्यों में उन्होंने ज्ञान का दर्शन करा दिया ! ऐसा ज्ञान जो सत्य से मिला दे, जो हर मनुष्य को बराबर का ज्ञानी बना दे! केवल पढ़े-लिखे ही ज्ञानी नहीं होते इस बात का एहसास करा दे.

आज बनारस में हजारों बुनकर हैं. इनमें बहुसंख्य अंसारी हैं, लेकिन कुम्हार, मल्लाह, कोयरी, राजभर, अनुसूचित जाति आदि कई बिरादरियों के लोग भी करघे पर हैं. ये सभी जब करघे पर बैठते हैं, तो सोचते हैं "हम क्या है ? हम तो मामूली मजदूर हैं !" कबीर साहब की बात मानें तो वे कहेंगे "नहीं, तुम मज़दूर नहीं, कारीगर हो, रचनाकार हो, और इसलिये ज्ञानी हो.तुम समाज को सभ्यता से जीने के साधन मुहैय्या करते हो."

खुद को ज्ञानी मान लेने से भला क्या होगा? ज्ञान केवल स्कूल की पढ़ाई से ही मिलता है ऐसा सोचना अज्ञान है.

कारीगर समाज द्वारा खुद को ज्ञानी मानने और समाज में अपने ज्ञान का दावा स्थापित करने से दुनिया बदल जाती है. मनुष्य अपने हुनर का ज्ञानी है, तो उसे इस ज्ञान से बल मिलता है, दुनिया को समझने का एक नज़रिया बनता है, और अपनी और समाज की ज़िन्दगी बेहतर बनाने के रास्ते भी बनते हैं. वो दृष्टि मिलती है जो कबीर साहब को मिली. यही नहीं समाज में अपने हुनर तथा पेशे को इज्ज़त मिलती है, जो हैसियत को ऊंचा उठाती है.

कबीर साहब की सीख पर गौर करना आज बहुत ज़रूरी है. क्योंकि सरकारें, अफसर, व्यापारी, और पढ़े-लिखे लोग हर तरह के कारीगरों को केवल साधारण मज़दूर मानते हैं, जो केवल दिया हुआ काम करता है, आय भी इसी हिसाब से तय की जाती हैं और मान भी. बनारसी साड़ी का रुतबा और कीमत तो कारीगरों से है, फिर बुनकरों की आय इतनी कम क्यों है? इसलिए कि उनके ज्ञान की कीमत को उत्पादित सामान की कीमत में नहीं जोड़ा जाता.

बुनकर और तमाम तरह की वस्तुएं बनाने वाले और सेवा देने वाले लोग ज्ञानी हैं, केवल उनके ज्ञान का प्रकार अलग है. कारीगर को भी पढ़े-लिखों के बराबर आय होनी चाहिए. कबीर साहब के सन्देश के समकालीन अर्थ को हमें समझना होगा.

ज्ञान में ऊंच-नीच मंजूर नहीं

-फ़ज़लुर्रहमान अंसारी, बुनकर साझा मंच, वाराणसी

कबीर एक बुनकर थे. वे एक महान दिव्यदर्शी कवि थे. आज भी कबीर साहब अपने दोहे और पदों के माध्यम से हमारे बीच जीवित हैं। उन्होंने जो काव्य गाया, वह उन्होंने कपड़ा बुनने का काम करते हुए ही गढ़ा था. उनका बुना हुआ कपड़ा आज नहीं है पर उनकी वाणी आज भी जीवित है.

वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे जो हाथ पांव समेट कर पेट भरने के लिए समाज के ऊपर भार बनकर रहते।

कोई उन्हें संत के तौर पर तो कोई उनकी लिखी कविताओं और दोहे के लिए याद करता है. हम कबीर को उनके ज्ञान और दर्शन की उन ऊंचाइयों के लिए याद करते है, जहाँ तक वे अकेले नहीं पहुंचे बल्कि हर जुलाहे और हर कारीगर को उस ऊंचाई को छूने का मार्ग बना गए. सदियों तक उनकी वाणी की शक्ति का संचार कराती रहेगी. कबीर जी धन सम्पत्ति जोड़ना भी उचित नहीं समझते थे.
कबीर जी ने आगे की पीढ़ी के लिए भी धन का संचय न करने का उपदेश दिया. उसके लिए धन की जरूरत नहीं है. उन्होंनेथोड़ेमें ही संतोष करने का उपदेश दिया.

आज कबीर का सन्देश यही है कि हर इंसान ज्ञानी होता है. अध्यापक का ज्ञान अलग है, बढई का अलग, इंजीनियर का अलग और लोहार का अलग, टेक्सटाइल विशेषज्ञ का अलग और जुलाहे का अलग. कबीर साहब कहते हैं कि इन सभी को ज्ञानी मानो, ये समानरूप से ज्ञानी कहलाने के अधिकारी है, ज्ञान में ऊंच-नीच नहीं होती.

अमरपुरी, बेगमपुरा, कल्याणपुरी और स्वराज

-रामजनम, स्वराज अभियान

आज हमारे देश का किसान, कारीगर और छोटा दुकानदार या छोटी पूंजी से जीविकोपार्जन करने वाले समाज बदहाली की अवस्था में हैं. पूरे जीव जगत के अस्तित्व पर खतरा मंड़ारा रहा है. भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में ऐसे ही आर्थिक जाल का निर्माण हो गया है, जिसमें इन समाजों के श्रम और ज्ञान की लूट पक्की और नियमित हो चुकी है. क्या इसके लिए हमारी आधुनिक राज व्यवस्था जिम्मेदार नही है ? आज पूरी दुनिया में मनुष्य समाज के सामने एक भयावह भविष्य की तस्वीर है. मौजूदा राज व्यवस्था, पश्चिम के विचारों से प्रेरित सोच,विचार, दर्शन, आधुनिक ज्ञान के केन्द्र विश्वविद्यालय, और साइंस में इन सवालों का कोई हल दिखाई देता है क्या ? मौजूदा दौर के सत्ता संचालन के प्रतिष्ठानों के पास इन सवालों का कोई हल नही है. ऐसे में सत्य और न्याय आधारित राज की कल्पना करने के लिए जमीनी स्तर पर सोचने की जरूरत है.

भारत के सन्दर्भ में देखा जाए तो इस समय सोच-विचार की बहस लोकतंत्र और तानाशाही के बीच फंसी हुई है. इस फंसाहट से बाहर निकलने के लिए भारत के बहुजन समाज के दार्शनिकों की तरफ रुख करना होगा और नये रास्ते की खोज करनी होगी. आज की परिस्थिति के हिसाब से हम इसे तीसरा रास्ता भी कह सकते है. यह तीसरा रास्ता बुद्ध, कबीर, रविदास, गांधी आदि संतों की दार्शनिक परम्परा के बल पर खोजा जा सकता है.

यदि हम कबीर, रविदास और गांधी के जीवन और विचारों की गहराइयों में जाएँ तो पायेंगे कि ये बहुजन समाज के दार्शनिक अपने काल की परिस्थिति के हिसाब से एक जैसी ही सत्ता की बात कर रहे हैं और वह है सत्य की सत्ता. इस सत्ता का साक्षात्कार सामाजिक भाईचारा और बराबरी का विचार, प्रत्येक जड़-जीव को अपने गुण धर्म के अनुसार कर्तव्यबोध होने और इस कर्तव्यबोध से कार्य करने की स्वायत्तता और मर्यादा का बोध होने से होता है. इस तरह का विचार गढ़ते समय ये संत जीविकोपार्जन के विभिन्न आयामों से जुड़े दिखाई देते हैं. जहां गांधी सूत कातते हैं, वही कबीर कपड़ा बुनते हैं और रविदास जूता गांठते हैं .

गांधी समाज-संगठन के आदर्श को स्वराज कहते हैं, कबीर अमरपुरी, रविदास बेगमपुरा और बासवन्ना कल्यानपुरी कहते हैं. आजादी आंदोलन के दौरान स्वराज एक लोकप्रिय और लोकहितकारी लक्ष्य के रूप मे अस्तित्व मे आया। गांधी के स्वराज दर्शन में सत्य का सर्वोच्च स्थान है।

गांधी स्वराज की स्थापना में सात सामाजिक पापों की बात करते हैं -- **सिद्धांत विहीन राजनीति, श्रम विहीन सम्पदा, विवेक विहीन मनोरंजन, चरित्र विहीन ज्ञान, नैतिकता विहीन व्यापार, मानवता विहीन विज्ञान, और त्याग विहीन पूजा.** कबीर अमरपुरी की बात करते हुए अपने दोहों के मार्फत सत्य को ही सर्वोच्च स्थान देते हैं.

सांच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप।
जिनके हिरदय सांच है, उनके हिरदय आप ।।

सत्य ही प्रत्येक जीव-जड़ मे स्थित सत्ता है । कबीर अमरपुरी और अमर देसवा के मार्फत एक ऐसे समाज एवं राज व्यवस्था की कल्पना करते हैं जहां समता और समृद्धि हो, कोई भेदभाव और शोषण का शिकार न हो.

"जहवां से अमर देसवा ।
पानी न पैन न धरती अकसवा,
चाँद सूर न रैन दिवसवा ।
ब्राह्मन न छत्री न सूद्र वैसवा,
मुगलि पठान न सैयद सेखवा ।।"

रविदास ने बेगमपुरा कहा है जहां कोई गम न हो, सब लोग दुखरहित यानि बे-गम हों. सब लोग बेगम तभी होगे जब सत्य और नैतिकता की सत्ता होगी, समाज में भाईचारा और बराबरी होगी तथा सबके अन्दर कर्तव्यबोध होगा । जाति व्यवस्था का विरोध करने और मन चंगा तो कठौती में गंगा का संदेश देने वाले संत रविदास बेगमपुरा के बारे में कहते हैं

"जात-पात के फेर मह उरझित रहे सब लोग ।
मानुषता को खात है, रैदास जात का रोग ।।

भारत के लोकविद्या समाज की ताकत और नैतिक बल को पहचाने तथा जागृत करने की जरूरत है, ऐसे देश को एक नये परिवर्तन विमर्श और एजेण्डे की दरकार है. जिसका रास्ता हमारे देश के बहुजन समाज के सतों के दर्शन में मौजूद है और लोकविद्या समाज के पास इसको आगे बढ़ाने की ताकत भी मौजूद है.

इसका सटीक उदाहरण एक साल से अधिक दिन चला किसान आंदोलन है. संत गुरुनानक के त्याग, बलिदान और भाई चारा से प्रेरित यह किसान आंदोलन कह रहा था कि "रोटी तिजोरी में बन्द नही होने देंगे" इसी बात को रविदास कहते हैं ***"ऐसा चाहो राज्य मै, जहाँ मिलै सबन को अन्न,***
छोट बड़ो सब सम बसै, रैदास रहे प्रसन्न। ।"

किसान आंदोलन में सत्य, न्याय, त्याग, और भाईचारा का अद्भुत नज़ारा दिखाई देता था. कबीर और रविदास के विचार एवं दर्शन में भी सत्य, न्याय, त्याग और भाईचारा के बल पर समाज के पुर्ननिर्माण की बात बार-बार उठायी गयी है.

संत कबीर : बहुजन समाज के महान दार्शनिक

-लक्ष्मण प्रसाद, भारतीय किसान यूनियन

कबीर साहेब एक महान संत थे . लोक के साथ जीने वाले, लोक की पीड़ा को अच्छी तरह समझने वाले, लोक के ऊपर थोपे गए थोथे विचारों को परखने वाले ,जटिल समस्याओं के समाधान का सहज रास्ता बताने वाले कबीर साहेब ही तो थे. मेहनत, सृजन , उत्पादन करने वालों के लिए ज्ञान का पथ प्रशस्त करने वाले थे. कबीर साहिब ने इंसानियत, सच्चाई, ईमानदारी, परोपकार, प्रेम, अहिंसा, असंग्रह, सहिष्णुता, सत्कर्म, समानता और न्याय को धर्म का वास्तविक स्वरूप बताया.

लोकस्थ-गृहस्थ संत : सामान्य लोगों के बीच पले- बढ़े कबीर साहेब घर में करघे पर हो रहे कपड़े की बुनाई का काम सीखे और इसे अपनी आजीविका के रूप में अपनाये . कपड़े की बुनाई के काम को वह धर्म का महत्वपूर्ण अंग मानते थे. साथ ही साथ कर्म को व्यक्ति की प्रतिष्ठा के रूप में देखते थे. चूंकि वह लोक के साथ जीवन जीते थे ,लोक व्यवहार और लोक मान्यताओं-मूल्यों को उन्होंने देखा समझा. यही कारण है कि कबीर साहेब लोगों की शक्तियों, सामर्थ्यों, योग्यताओं और कमजोरियों की पक्की समझ रखते थे और उन कमजोरियों से मुक्त होने का मार्ग अपने पदों के माध्यम से बताते थे. लोक पक्ष के संत होने के कारण लोकहित में अपने विचारों को वे पदों और सूत्रों के माध्यम से साधने का प्रयास किये. उनके पदों में व्यावहारिक शब्दों और लोकोक्तियों का प्रयोग देखने को मिलता है.

लोक में ज्ञान की दृष्टि : संत कबीर साहेब ने रोटी और पोथी के ज्ञान पर अकाट्य तर्क प्रस्तुत किए हैं. रोटी का ज्ञान लोकहित का ज्ञान है और पोथी का ज्ञान लोक-शोषण का. शिक्षा का वास्तविक स्वरूप उन्होंने पोथी में नहीं पाया बल्कि रोटी में पाया.

तू कहता कागज की लेखी /
मैं कहता आंखन की देखी //

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय /
ढाई आखर प्रेम का , पढ़े सो पंडित होय //

समाज में शक्ति संचार करने वाले संत: संत कबीर ने सामान्य लोगों के बीच छिपी ताकत को पहचाना, तरह-तरह के पारंपरिक काम करने वाले समाजों जैसे धोबी, नाई, लोहार, कुम्हार, दर्जी, जुलाहा, रंगरेज, किसान, शिल्पी इत्यादि के अंदर छिपे गुणों, विशेषताओं, ज्ञान, विद्या, कर्मठता, उत्पादनशीलता इत्यादि को प्रतिष्ठित किया. उन्होंने इन तमाम प्रकार के कामों में ही भगवान या खुदा का स्वरूप देखा. रोटी पैदा करने वाले, कपड़ा बुनने वाले, सिलाई करने वाले, कपड़े की धुलाई करने वाले, तेल पेरने वाले, जूता बनाने वाले, अनाज उत्पादन करने वाले ,दिन भर पसीना बहाने वाले तमाम लोगों के अंदर शक्ति का संचार किया. संत कबीर खुद बुनकर थे और सृजन को ही वे भगवान मानते थे. रचना, सृजन, उत्पादन करने वाले ही समाज के वास्तविक संचालक हैं. इनकी प्रतिष्ठा और एकजुटता आवश्यक है. इसीलिए उन्होंने इन सभी समाजों को शक्तिशाली बनाने के लिए अपने पदों में इनकी ताकत का बार-बार उल्लेख करके इनके अंदर की शक्ति को उभारने का प्रयास किया है .

काहे तू कुम्हलानी ?

-प्रेमलता सिंह , कारीगर नजरिया, वाराणसी

कबीरदास जी संत कवि होने के साथ मानवीय चेतना और सामाजिक परिवर्तन के दार्शनिक हैं। उनकी रचनाएँ उनके दार्शनिक पक्ष को बड़ी गंभीरता और सादगी से उकेरती हैं। उन्होंने प्रेम, साहचर्य, सौहार्द्र, संयम और आस्था को बहुजन समाज के जीवन मूल्यों में देखा। तत्कालीन समाज के संगठित ज्ञान और अध्यात्म के आडंबर को चुनौती दी. वे कहते हैं अहंकार त्यागे बिना प्रेम और भाईचारा नहीं बनाया जा सकता.

प्रेम न बाड़ी उपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस दे लयी जाय।।

यह चुनौतीआज के युग में भी उतनी ही सत्य है.
कबीरदास जी ने बहुजन समाज के ज्ञान और उनके जीवन मूल्यों की गरिमा को प्रतिष्ठित किया। उनका कहना है कि यह समाज ज्ञान-जगत में जनमता है, उसी को जीता है। उसे कहीं भटकने की जरूरत ही नहीं है। यह ज्ञान संपूर्ण समाज के लिए उतना ही ज़रूरी है, जितना जीवन के लिए जल. समाज में बसे ज्ञान तथा मूल्यों को कुंठित करने पर, जैसा की आज हो रहा है, बृहद् समाज भी स्वस्थ और समृद्ध नहीं बनाया जा सकता है, वह कुम्हलाता ही जायेगा. कबीर को याद करें, वे कहते हैं --

काहे रे नलिनी तू कुम्हिलानी ? तेरे नाल सरोवर पानी;
जल में उपजति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास

ना तल तपत ना उपरि आग, तोर हेत कह के संग लाग
कहैं कबीर जे उदकि समान, ते नहीं मरा हमरे जान.

•

लोकविद्या का दावा पेश करो

नीचे पुर्तगाल की कलाकार ग्राडा किलोम्बा की एक कविता है। हमें लगा कि ये कविता आज की सार्वजनिक दुनिया से लोकविद्याधर-समाज को बहिष्कृत किये जाने की प्रक्रिया को सामने लाती है। कविता कोई रास्ता तो नहीं बताती लेकिन लोकविद्या-समाज के दर्शन को किस तरह तुच्छ और निकृष्ट करार देने का षड़यंत्र चल रहा है, इसे खोलती है और एक बार फिर इस विश्वास को पुख्ता करती है कि रास्ता तो लोकविद्या का दावा पेश करने से ही निकलेगा।

जब वे बोलते हैं तो वो वैज्ञानिक है
हम बोलें, वो अवैज्ञानिक है.
जब वे बोलें, तो वो विश्वव्यापी
हम बोलें, सो सीमित.
वे बोलें सो है वस्तुगत
हम बोलें वो आत्मपरक.
वे बोलें सो तटस्थ
हम बोलें तो व्यक्तिगत.
वे बोलें वो तर्कसंगत
हम बोलें, वो भावनात्मक
जब वे बोलें तो है निष्पक्ष
हम बोलें, वो पक्षधर.
वे तथ्य आधारित,
हम केवल दृष्टिकोण.
वे ज्ञान पूर्ण,
हम मात्र अनुभव आधारित.
यह कोई 'शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व'
की बात नहीं है बल्कि,
एक आक्रामक ऊँच-नीच की बात
है.
यही श्रेणीबद्धता तय करती है-
कि कौन बोल सकता है और
हम क्या बोल सकते हैं .

Grada Kilomba in
'Decolonizing Knowledge' (2016)
(विद्या आश्रम द्वारा अनुदित)

भ्रम के जाले फूंक दो

भारतीय सभ्यता के बारे में

भारतीय सभ्यता केवल राजाओं/राजनेताओं के युद्धों/राजनीति में अथवा शास्त्रों के भण्डार में नहीं देखी जानी चाहिए. ऐसा करने से बड़ा भ्रम पैदा होता है.

भारतीय सभ्यता के जीवंत रूप यहाँ के सामान्य लोगों के जीवन में बसते हैं, यहीं खिलते और पनपते हैं. नीचे ऐसे ही कुछ बिंदु उजागर किये हैं, जो सामान्य लोगों के पक्ष में सक्रियता, खुशहाली और सम्मानपूर्ण समाज-संगठन के समकालीन रूपों की पहचान कराने में मददगार हो सकते हैं. इस क्रिया में सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्त्ता आगे बढ़कर हिस्सा लें और एक न्यायसंगत समाज के निर्माण का दिशाबोध हासिल करने में योगदान करें.

1. **<u>जीवन संगठन</u> की परम्परा 'सामान्य जीवन' की परंपरा है.**
2. **<u>दर्शन</u> की परंपरा 'संत दर्शन' की परंपरा है.**
3. **<u>राज</u> की परंपरा 'स्वराज' की परंपरा है.**
4. **<u>ज्ञान</u> की परंपरा 'लोकविद्या' की परंपरा है.**
5. **<u>आर्थिक संरचना</u> की परंपरा 'स्वदेशी और स्थानीयता' की परंपरा है.**
6. **इस सभ्यता में हर गतिविधि कलापूर्ण है और 'सामान्य जीवन' कलाकर्म की प्रमुख स्थली है.**
7. **<u>सामाजिक मूल्यों और उनके नियमन</u> की परम्पराएँ 'बहुजन समाज और सामान्य जीवन' की परम्पराएँ हैं.**

आधुनिक राज्य, इसका विधान, ज्ञान का संगठन और जीवनशैली भारतीय सभ्यता के जीवंत स्रोतों की अवहेलना करते हैं. हर तरह की ऊँच-नीच, गैर-बराबरी, बेइज्जती, वंचना और पर्यावरण विनाश से मुक्ति का रास्ता सामान्य जीवन, लोकविद्या, स्वराज, संत दर्शन और समाज की पुनर्रचना में है.

भारत के राजाओं के बारे में

आधुनिक पठन-पाठन ने जिस तरह संत-दर्शन को दर्शन का दर्जा नहीं दिया, जिस तरह किसान और कारीगर समाजों को केवल मेहनतकश कहा उसी तरह आधुनिक ज्ञान और शिक्षा में इस सच्चाई को भी दरकिनार किया कि इस देश पर अधिकतर बहुजन समाजों के ही राजाओं ने राज किया है. उत्तर से लेकर दक्षिण तक मौर्य काल से पहले और बाद में जितने भी राज्य रहे, उन पर कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो किसान,कारीगर और आदिवासी समाजों के राजाओं का राज था. संत कबीर की मानें तो भ्रम का जाला फूंकना आवश्यक है और बहुजन समाज को इस देश की विरासत के ज्ञाता और कर्ता की भूमिका में आना है.

संत परंपराओं में समाज-संगठन के विचार
महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु

संत दर्शन की परम्पराओं के बारे में अनेक विद्वानों ने लिखा है, इनमें वाराणसी के साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी और शुकदेव सिंह के लेखन में दर्शन के विस्तार और गहराईयों को जानने का अवसर मिलता है. इस दृष्टि से नामवर सिंह की पुस्तक 'दूसरी परंपरा की खोज' भी महत्वपूर्ण है.

मनुष्य जीवन के आदर्श

- **हर घट में सत्य का निवास है और हर मनुष्य ज्ञानी है**, इसलिए सभी मनुष्य बराबर के सम्मान के अधिकारी हैं.
- **पर-पीड़ा की संवेदना ही सत्य से साक्षात्कार का ज्ञान-मार्ग है**. ज्ञान पोथी, प्रवचन में नहीं बल्कि दूसरों के सुख-दुःख को समझने में है.
- **दिल और दिमाग की संयुक्त पहल समाज सृजन का मार्ग है.** संवेदना, प्रेम, त्याग, क्षमा, लगन, आदि से ही समाज का ताना-बाना बुना जाता है.
- **ज्ञान और श्रम अलग नहीं किये जा सकते**. यानि कोई भी मनुष्य मज़दूर नहीं होता और मात्र मज़दूर की हैसियत से जिंदा रहने की मजबूरी होना अन्याय है, अमानवीय है. सबके पास अपना सम्माननीय रोज़गार हो.

सामाजिक व्यवस्था के आधार

- **जीविका के साधनों पर सबका अधिकार हो.** इस अधिकार का स्वरुप स्थान, ज्ञान, संसाधन, उत्पादन और समाज के समकालीन रूपों से मेल खाता हो.
- **आय इतनी हो कि कोई भूखा ना रहे.** अमीरी और गरीबी का अंतर मिटे. गैर-बराबरी ख़त्म हो.
- **गृहस्थ जीवन सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन की श्रेष्ठ प्राथमिक इकाई है.** यही स्वराज की प्रायोगिक इकाई है. गृहस्थ जीवन एक ऐसा स्वायत्त स्थान बनाने की तपस्या है, जिसमें हर सदस्य अपने ज्ञान और क्षमताओं को संवर्धित करने और पहल लेने का अवसर पाये. न्याय, त्याग, सहजीवन, प्रेम और क्षमा का संतुलन साधकर समाज के प्रति इन्हीं मूल्यों से लैस होकर अपनी जिम्मेदारियां वहन करने का बीड़ा उठाना स्वराज का पहला कदम है.
- **न्याय, त्याग, भाईचारा, संयम का आचरण** कर ही समाज में बराबरी, खुशहाली और सभ्यता का संवर्धन होता है. **सभी की खुशहाली ही सभ्यता की निशानी है.**

व्यक्ति, समाज और समाज संगठन के रिश्ते

- **व्यक्ति और समाज दोनों एक दूसरे में इस तरह समाहित हैं कि अपनी स्वायत्तता बनाकर एक दूसरे को मज़बूत करते रहते हैं.** स्वायत्त मनुष्य और स्वायत्त समाजों से बने बृहत् समाज ही स्वराज को आकार देने की क्षमता रखते हैं.
- संगठित धर्म, संगठित ज्ञान, संगठित अर्थव्यवस्था, संगठित भाषा और संगठित राज्य (साम्राज्य) ये सभी **पाखण्ड और शोषण के स्थान हैं**. बड़ा राज्य, बड़ी सेना, बड़ा बाज़ार, बड़े बाँध, बड़े शहर, बड़े उद्योग/उद्यम ये सब बहुजन समाज के शोषण के आधार पर ही बनते हैं क्योंकि इन्हें बनाने के लिए श्रम, ज्ञान, वित्त, प्राकृतिक संसाधन, आदि सभी को बहुत बड़े पैमाने पर संगठित करना पड़ता है. और यह झूठ, ठगी, हिंसा और दमन के बिना नहीं किया जा सकता.

वाराणसी के ज्ञानी निवासियों ...

किसान, कारीगर, आदिवासी, लोक-कलाकार,
महिलाएं व ठेला-पटरी-गुमटी के दुकानदार
और सेवा-मरम्मत करने वाले सभी परिवार,
ये सब हैं लोकविद्या के ज्ञानी और जानकार.

जब माना जायेगा लोकविद्या को भी ज्ञान,
और मिलेगा पढ़े-लिखे लोगों के ज्ञान-सा सम्मान
जब होगी इनकी आमदनी भी सरकारी
कर्मचारी-सी,
तभी मिलेगी इस मुल्क को सच्ची आज़ादी.

कबीर जयंती पर सांस्कृतिक कार्यक्रम

वाराणसी कबीर साहब की जन्मभूमि है, यहाँ कि मिट्टी और लोक का दर्शन उनकी वाणी में घुला है. वाराणसी के स्वभाव को गढ़ने वाले इस संत की जयंती के उपलक्ष्य में 4 जून से 11 जून 2023 तक वाराणसी के नागरिक समाज द्वारा शहर के विविध स्थानों पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जायेगा.

आयोजक
कबीर जन्मोत्सव समिति, वाराणसी
संपर्क : 9599078410,
7905245553, 9935498587

जागु जागु जंजाली मनुवा

जागु-जागु जंजाली मनुवा, यह तो मेला हाट का

अन्न बिके, जल बिके, बीज भी बिकाय
ढोर बके , ज़मीन बिके, जोरू भी बिकाय
धरम बिके, करम बिके, ज्ञान भी बिकाय
अरे, छोड़ भरम, जाग ज़रा यह हाट है लुटेरा.

लिखा-पढ़ी के भरम जाल ये,
इस जंजाल में तू क्यों उरझे ?
तू ज्ञानी, लोकविद्या का स्वामी,
क्यूँ अटके, क्यूँ भटके, यह हाट तो लुटेरा.

वाराणसी ज्ञान पंचायत के बारे में

वाराणसी ज्ञान पंचायत यह वाराणसी के लोगों, स्त्री-पुरुषों का ज्ञान मंच है. इस मंच की मान्यता है कि हर मनुष्य, स्त्री और पुरुष, ज्ञानी है. यह ज्ञान पंचायत ज्ञान पर जन-सुनवाई का रूप भी है. इस पंचायत में पढ़े-लिखे और अनपढ़, प्रोफ़ेसर और सामान्य गृहिणी, कृषि वैज्ञानिक और किसान, टेक्सटाइल इंजीनियर और बुनकर, जल वैज्ञानिक और मल्लाह के ज्ञान में ऊँच-नीच नहीं की जाती और सभी के ज्ञान को बराबरी का दर्जा रहता है.

वाराणसी ज्ञान पंचायत, वाराणसी की व्यवस्थाओं को गढ़ने में सभी समाजों के ज्ञान की भागीदारी और सभी के ज्ञान को बराबर की प्रतिष्ठा का आग्रह करती है.

गाँव-गाँव में घाट-घाट पर
जंगल बस्ती हर पनघट पर,
मेला हाट और बाट-बाट पर
पग-पग पर हैं विविध ज्ञानधर.
यहीं से अलख जगाना है, कौन है ज्ञानी ?
ज्ञान कहाँ कहाँ ? फैसला यह करवाना है.

लोकजीवन और दर्शन

भारत की संस्कृति और सभ्यता को समझने और उसके नवीनीकरण, पुनर्रचना आदि के लिए यहाँ की दर्शन परंपराओं को यहाँ के 'लोक' के नज़रिए से समझने की ज़रूरत है. यह नज़रिया संत-दर्शन में मुखरित है. दर्शन जीवन की जीवंत धारा में ही स्पष्ट उभरता है. संतों के दर्शन में समानताओं को देखें तो इसमें इस भूमि के लोक-दर्शन और लोकवाणी का ऐसा प्रबल प्रवाह दिखता है जो हर युग में प्रासंगिक बनकर उभर आता है.

भारत की दर्शन परंपराओं की विशेषता यही है कि वे 'लोक' में जन्म लेती रहीं और लोक-प्रवाह में धुलकर अपने को निखारती रहीं. यही वजह है कि यहाँ स्थान और काल के अनुरूप दर्शन की अनेक धाराओं ने जन्म लिया और एक दूसरे से सतत् लेन-देन कर नवीन और समृद्ध बनीं. **अनेक सदियों से अनेक संतों ने मिलकर इस ज्ञान-मार्ग को बनाया है. यहाँ की दर्शन परंपराओं की प्रमाणिकता यहाँ की संत परंपराओं में बसी है. ये संत बहुजन समाजों के दार्शनिक हैं,** जिन्होंने लोक-जीवन में रहकर, लोक के प्रति कर्तव्यों को निभाते हुए लोक-ज्ञान के सहारे दर्शन को ऊँचाइयों तक पहुँचाया है और आज तक सत्य, न्याय और भाईचारा की बुनियाद पर समाज निर्माण की चाहत रखने वालों के लिए प्रासंगिक बने हुए हैं.

महावीर, बुद्ध, विदुर, याज्ञवल्क्य, गोरखनाथ, कबीर, रविदास, गुरुनानक, तुलसीदास, तुकाराम, नामदास, अमीर खुसरो, बसवन्ना, बहिणाबाई, मीराबाई, रामकृष्ण, अरोबिन्दो, गाडगे, रमण, गाँधी आदि जैसे अनेकों-

अनेक संतों ने अपने समय में लोकदर्शन को वाणी दी है. संत कबीर जयंती के अवसर पर हमारा प्रयास और आग्रह है कि इस वाणी को समाज-दर्शन और समाज-पुनर्निर्माण के बुनियादी सिद्धांतों के रूप में देखें. ये हमें समाज संगठन के वे समकालीन रूप देखने में मदद करेंगी, जो न्याय, त्याग और भाईचारे पर आधारित समाज को आकार दे सकेंगी.

यह अंक इसी प्रयास का अंग है. राज्य के संगठन में आधुनिक राज्य को सर्वोच्च प्रतिष्ठा देना, ज्ञान में साइंस को और बाज़ार में दूरस्थ व्यापार को तथा सेवा उद्यमों को धंधा बनाना ये सब लोकविरोधी हैं, ऐसा मानने वालों की संख्या दुनिया में बढ़ती जा रही है. आधुनिक साइंस और तकनीकी बहुसंख्य आबादी से जीने के अधिकार छीन रही हैं और पर्यावरण का विनाश कर रही हैं इसे मानने वालों की भी संख्या बढ़ रही है. इस स्थिति में राज्य-संगठन के ऐसे दर्शन और सिद्धांतों की ओर हमें देखने की ज़रूरत है, जिनमें शासन, ज्ञान, बाज़ार, उत्पादन आदि की व्यवस्थाओं के लोकोन्मुख रूप बनाने की दिशा मिले, वितरित व्यवस्थाओं के बारे में सोचने के प्रस्थान बिन्दू मिलें.

गंगा जी के किनारे बसी शिव की यह नगरी, वाराणसी, जहाँ हर युग में अनेक धाराओं के संत आते रहे हैं, इस कार्य की प्रेरणा का प्रबल स्रोत रही है. **'सुर साधना'** इन दर्शन धाराओं से मोती चुनकर जीवन और समाज की बुनियाद बनाने की आकांक्षा रखती है.

सम्पादक

वाराणसी ज्ञान पंचायत के लिए लोकविद्या जन आन्दोलन, भारतीय किसान यूनियन, स्वराज अभियान, बुनकर साझा मंच, माँ गंगाजी निषादराज सेवा समिति द्वारा संयुक्तरूप से संयोजित. [संपर्क : चित्रा सहस्रबुद्धे (9838944822), लक्ष्मण प्रसाद (9026219913), रामजनम (8765619982), फ़ज़लुर्रहमान अंसारी (7905245553), हरिश्चंद्र बिन्द (9555744251)] पता : विद्या आश्रम, सा 10/82 अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007